ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 147-150

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

वैदिक एवं पौराणिक पृष्ठभूमि के विशेष सन्दर्भ में पर्यावरण की महत्ता

डॉ0 विनीत नारायण दूबे

एसोसिएट प्रोफेसर– भूगोल विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया (उ0प्र0), भारत

Received- 17 .11. 2021, Revised- 23 .11. 2021, Accepted - 27.11.2021 E-mail: vineetdubey1968@gmail.com

सारांशः ***पर्यावरण से सम्बन्धित अनेकों प्रसंग तथा व्याख्यायें हमारे वेदों उपनिषदों तथा पुराणों में भरे पड़े हैं। प्राचीन ऋषि–मुनियों की पूरी दिनचर्या ही प्रकृति पर निर्भर थी। जहाँ अरण्यों में उपलब्ध सामग्रियों से ही उनके निवास गृह कुटिया का निर्माण होता था, वहीं वनीय फल–फूलों पर उनका जीवन आधारित था। नदियों में स्नान होते थे तथा उन्हीं झुरमुटों के मध्य एकान्त स्थल पर वृक्षों के नीचे पूजा–पाठ तथा यज्ञादि क्रिया–कलाप होते थे। इन्हीं सघन वनों के गुरुकुल आश्रमों में शिष्य विद्या ग्रहण करते थे। इसी प्रसंग का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान राम के विषय में लिखा है कि "गुरु गृह पढ़न गये रघुराई, अल्पकाल विद्या सब पायी।" राजगृहों से राजपुत्रों को ब्रह्मचर्य व्रत के पालन तथा शिक्षा ग्रहण करने के लिए इन्हीं अरण्य स्थित 'गुरुकुल' आश्रम रूपी पाठशालाओं में भेज दिया जाता था। राजकुमार वेदों, पुराणों तथा धनुर्विद्या इत्यादि के ज्ञान से सम्पन्न होकर इनसे निकलते थे। गुरुकुल आश्रम स्थित जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों, फल–फूलों तथा गुरु के यज्ञादि कार्यों सम्बन्धी सम्पूर्ण सुरक्षा, व्यवस्था इन्हीं शिष्यों को करनी पड़ती थी। गुरुकुलों में गुरू ही इनके माता–पिता के सम्पूर्ण दायित्वों का निर्वहन करते थे तथा एक योग्य ब्रह्मचर्य व्रतधारी को सम्पूर्ण ज्ञान से मंडित तथा परिपूर्ण करके उन्हें 'गृहस्थ आश्रम' के योग्य बनाकर ही अपने दायित्वों से मुक्त होते थे। प्राचीन काल में पर्यावरण में किसी भी प्रकार का असन्तुलन नहीं था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरणीय तत्वों को देवता मानकर उनकी पूजा करता था। हानि पहुँचाने को कौन कहे? प्रत्येक का तन–मन तथा धन से रक्षा करना नैतिक तथा धार्मिक कर्त्तव्य था। जल, वायु, सूर्य, पृथ्वी, आकाश एवं विभिन्न वनीय वृक्षों को देव तुल्य स्थान प्राप्त था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन तत्वों को विशेष स्थान देते हुए लिखा है कि 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' यह ऐसे पाँच तत्व हैं जिससे सृष्टि का निर्माण होता है। इसे ही पर्यावरण विज्ञानियों ने बाद में 'पारिस्थितिकी' का नाम दिया। डच मूल के भारतीय विद्वान फादर कामिक बुल्के ने अपने शोध–ग्रन्थ 'रामकथा उद्भव और विकास' में कहा है कि "बाल्मिकी रामायण तो जैसे पर्यावरण की महागाथा ही है।***

कुंजीभूत शब्द– गृह कुटिया, सघन गुरुकुल, अल्पकाल विद्या, शिक्षा ग्रहण, पाठशालाओं, धनुर्विद्या, गुरुकुल आश्रम।

वैदिक काल को अरण्य संस्कृति का स्वर्णकाल कहा जाता था, उन दिनों वन देवी 'अरण्यानी' की पूजा अनिवार्य थी। वन देवी 'प्रकृति' का पर्याय मानी जाती थीं। वनों की विशेष महत्ता थी तथा सभ्यताओं का विकास भी इन्हीं के छाया तले हुआ था, ऐसा स्वीकार किय जाता है। भारतीय आर्य परम्परा तो सदैव इसकी पूजक रही है। अरण्य, तपोवन तथा कुन्ज क्रमशः ज्ञानस्थली, तपस्थली तथा कर्मस्थली माने जाते थे। स्कन्ध पुराण तथा कठोपनिषद् के प्रसंगानुसार 'पीपल' वृक्ष की जड़ में ब्रह्मा, तने में विष्णु, तथा टहनियों में शिव का वास होना माना जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी पीपल कावृक्ष औषधि गुण सम्पन्न तथा ग्रीष्मकाल में विशेष शीतल प्रदायक माना गया है। इसकी छाया मोहक तथा अतुलनीय होती है। हमारे ऋषि–मुनियों ने इन्हीं गुण सम्पन्नता को स्वीकार करते हुए इसकी पूजा का विशेष विधान बनाया था, जो आज भी समाज में प्रचलित है। ऋग्वेद में सोम वृक्ष तथा अथर्ववेद में पलाश वृक्ष की पूजा का विधान है।

'माँ शीतला' को पलाश वृक्ष की देवी माना गया है। प्राचीन काल से चली आ रही परम्परानुसार आज भी पर्यावरणीय दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा अपने औषधि गुणों के कारण देश के बहुत से भागों में वृक्षों की पूजा का विधान विभिन्न अवसरों पर प्रचलित है। अनेक स्थानों पर वर–वधू के गृहस्थ–आश्रम में प्रवेश के समय वृक्ष लगाने की परम्परा है तथा उसकी सुरक्षा को दाम्पत्य जीवन से जोड़ दिया गया है। यह मान्यता है कि वह वृक्ष जितना ही हरा–भरा होगा वह दाम्पत्य जीवन भी उतना ही खुशहाल होगा। वट–वृक्ष की पूजा, महिलायें सुहाग प्राप्ति तथा उसकी रक्षा की कामना हेतु करती हैं। ग्रीष्म काल में नीम के पेड़ की पूजा, कार्तिक माह में तुलसी की पूजा, महाशिव रात्रि पर वेल, धतूर अर्पण आदि परम्परायें प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं, जो वृक्षों की पर्यावरणीय महत्ता की सूचक हैं। वैदिक तथा पौराणिक काल से ही इनकी पूजा का प्रचलन ऋषि–मुनियों ने इसलिए स्वीकार किया था जिससे औषधि गुण सम्पन्नता वाले वृक्षों की रक्षा तथा पर्यावरण संरक्षण एवं सम्बर्धन का मार्ग प्रशस्त हो सकें, इसके पीछे उनकी यही मंशा थी। अन्य औषधि सम्पन्न वृक्षों में शमी, आम, जामुन, असन, लोघ्र, शाल, अंकोल, वेल, तेंदू, काशमरी, ऑवला, कदम्ब आदि महत्वपूर्ण हैं। इनकी महत्ता को दर्शाने वाली अनेक परम्परायें आज भी देश के अनेक भागों में प्रचलित हैं।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

हमारे देश में इन प्राचीन परम्पराओं का प्रचलन यह सिद्ध करता है कि हमारे ऋषि–मुनिगण पर्यावरण संरक्षा के प्रति कितने जागरूक थे कि उन्होंने वृक्षों की रक्षा के लिए उनकी पूजा का ही विधान बना दिया था। हरे वृक्षों को काटने पर प्रतिबन्ध हमारे धर्मशास्त्रों में वर्णित था। ऐसा कहा जाता था कि ऐसा कार्य करने वाला संतान सुख से हीन होता है, क्योंकि वृक्ष को पुत्र के समान स्थान दिया गया था। इसी कारण हवनादि क्रियाओं में सूखी लकड़ियों का ही प्रयोग किया जाता था। वृक्षों की श्रेष्ठता के सम्बन्ध ने कहा भी गया है–

दश कूप समो वापी, दशवापी समो ह्रदः।
दशह्रद समः पुत्रो, दश पुत्रं समो द्रुमः।।

दस कूपों के निर्माण का पुण्य एक वापी बनाने से, दस वापी बनवाने का पुण्य एक तालाब तथा दस तालाबों का पुण्य एक पुत्र उत्पन्न करने से तथा दस पुत्रों का पुण्य एक वृक्ष लगाने से होता है। कुपुत्र से तो अपयश की आशंका बनी रहती है, लेकिन वृक्ष रूपी श्रेष्ठ सुपुत्र सदैव कल्याणकारी होता है। अग्नि पुराण में भी वृक्षों को पुत्रवत् माना गया है :–

तस्माद् सुबहवो वृक्षा रोज्या श्रेयोमिवाऽछता।
पुत्रवत् परिपालाश्च ते पुत्रा धर्मतः स्मृताः।।

महाभारत के 'अनुशासन पर्व' में वृक्षों को पुत्र के समान तारने वाला तथा यश प्रदान करने वाला कहा गया है। "पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयतीह मानवान्। वृक्षदं पुत्रवत् वृक्षास्तारयन्ति परत्रतु।।" अनुशासन पर्व

वैदिक तथा पौराणिक काल में लोगों की प्रकृति पर अधिक निर्भरता थी, सभी प्रकृतिपूजक थे। प्रकृति को पर्याप्त संरक्षण प्राप्त था। यही कारण है कि पर्यावरण में आंशिक प्रदूषण भी नहीं व्याप्त था। लोग प्रकृति रूपी माता के अंक में स्वस्थ सानन्द थे। किसी जीव का दूसरे जीव से कोई बैर–भाव नहीं था। "वैर बिहाई चरई एक संगा" उक्ति भी इसे सिद्ध करती है। मनुष्य, पशुओं, जीव–जन्तुओं तथा वनस्पतियों में प्रगाढ़ अन्तर्सम्बन्ध था। कोई किसी को कष्ट पहुँचाने को कौन कहे, कभी विचार भी नहीं करता था। मुर्गे के भोर के कु–कु डू कू .... की आवाज से उठकर मनुष्य निशुल्क प्राकृतिक छटा का आनन्द लेता था तथा उसके निरोग रहने का यही राज था। 'विष्णु पुराण' तथा 'पृथ्वी पुराण' में दी गई व्याख्यायें इसकी पुष्टि करती हैं। वेदव्यास रचित महाभारत मात्र राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्र का ही अतुलनीय ग्रन्थ नहीं है, वरन् अनेक ज्वलन्त समस्याओं जैसे स्त्री हिंसा, भ्रूण हत्या तथा जनसंख्या विष्फोट से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान भी इसके 'वन पर्व' खण्ड में वर्णित हैं। पाण्डवों के वनवास अवधि के प्रसंग में विभिन्न तीर्थ स्थलों, वनस्पतियों तथा पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का सजीव चित्रण व्यास जी ने किया है। महाभारत जैसे पवित्र धार्मिक पौराणिक ग्रन्थ का इन समस्याओं के समाधान की दिशा में अनुशीलन भावी पीढ़ी को स्वस्थ दिशा–निर्देश तथा उनके पथ–प्रदर्शन में अनुकरणीय उदाहरण बन सकता है। **'सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां, शस्य श्यामलां मातरम्'** गीत में बंकितचन्द चटर्जी ने जिस पृथ्वी का चित्रण किया है, उसमें पर्यावरण संरक्षण की समग्र जीवन्तता चित्रित है। वैदिक काल में प्राचीन ऋषि–मुनियों ने पर्यावरण के महत्व को समझकर ही उपवन लगाने तथा नित्य यज्ञादि आयोजित करने का नियम बनाया था। पर्यावरण को प्रत्यक्षतः प्रभावित करने वाले अग्नि, वायु, पर्जन्य, वरुण, सोम, पृथ्वी तथा वृक्ष आदि वैदिक ऋषियों के पूज्य रहे हैं। प्राकृतिक उपांगों की उपासना, भूमण्डलीय संरक्षण तथा प्राकृतिक सन्तुलन स्थापन हेतु मंगलकारी है। शुक्ल यजुर्वेद में इसका भी वर्णन किया गया है।

ओऽम् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः, पृथिवी शान्ति रापः शान्ति रोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्ति र्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा माशान्तिरेधि।। शुक्ल यजुर्वेद

वृक्षों की वैज्ञानिक महत्ता आज स्वीकार की जाती है। केला, बरगद तथा पीपल में मेलाटोनिन नामक हारमोन पाया जाता है जो अन्य वृक्षों में नहीं पाया जाता। पूजा–पाठ यज्ञादि कार्यो में इसी कारण से इसे महत्व प्रदान करने हेतु धार्मिक कृत्यों से जोड़ा गया था। श्रीमद् भावगत् गीता के 'दशम अध्याय' में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं को 'अश्वत्य' सर्ववृक्षाणाम्' अर्थात् सभी वृक्षों में 'पीपल का वृक्ष' कहा है। भगवान गौतम बुद्ध को 'बुद्धत्व की प्राप्ति' बरगद के पेड़ के नीचे ही हुई थी। अतः धार्मिक दृष्टि के साथ ही साथ वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह वृक्ष परम उपादेय है। वनस्पतियों में चेतना की स्वीकृति, देवत्व की प्रतिष्ठा तथा पारिवारिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मनुष्यों, वनस्पतियों तथा जीव–जन्तुओं के प्रगाढ़, अन्तरंग, अन्तर्सम्बन्धों के मार्मिक तथा भावपूर्ण सम्बन्धों के प्रसंग प्राचीन काल से ही रहे हैं। उपमा के अतुलनीय कवि महाकवि कालिदास के विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में मानव पर्यावरण सम्बन्धों का बहुत ही मार्मिक तथा कारुणिक प्रसंग दिया गया है।

शकुन्तला के पति–गृह गमन के समय महर्षि काश्यप ऋषि, वन्य वृक्षों से अनुमति तथा आशीर्वाद हेतु कहते हैं–

भो भो सान्निहितास्तपोवन तरवः पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्व पीतेषु या,

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

नादत्ते प्रियमण्डमापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्। आद्यो वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पति गृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।। अभि0 4/9

अर्थात् है समीपस्थ तपोवन के वृक्षों! जो शकुन्तला तुम्हें जल पिलाये बिना स्वयं जल पीने का विचार भी नहीं करती थी, जो आभूषण प्रिय होने पर भी तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण तुम्हारे नये पल्लवों को भी नहीं तोड़ती थी, तुम्हारे प्रथम पुष्पोद्भव के समय जो उत्सव का आयोजन करती थी, वही शकुन्तला अब अपने पतिगृह को जा रही है, तुम सभी अपनी (आशीर्वाद) स्वीकृति प्रदान करो। मानव तथा वृक्षों में अगाध प्रेम का प्रकटीकरण करते हुए महाकवि कालिदास ने उन्हें देवत्व प्रतिष्ठा प्रदान की है। आश्रम पालित शकुन्तला के पतिगृह गमन के समय पार्श्वस्थ वृक्षों ने उसे अनेक प्राकृतिक उपहार प्रदान किये। ''किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान शुभ्र मांगलिक रेशमी वस्त्र प्रदान किया, तो किसी ने चरणों को रंगने के लिए लाक्षारस (महावर, रंग) प्रदान किया। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए सुन्दर नूतन किसलयों की प्रतिस्पर्धा करने वाले वन देवता के करतलों से आभूषण प्रदान किया। शकुन्तला के पतिगृह गमन के समय सम्पूर्ण तपोवन के पशु–पक्षियों एवं वनस्पतियों के विरह–कातरता की अभिव्यक्ति को उनके आपसी सम्बन्धों की प्रगाढता एवं उतुंगता को अभिव्यक्त करती है। सखि प्रियंबदा, आश्रम अवस्थित वृक्षों तथा पशुओं के अत्यधिक संताप की अभिव्यक्ति करते हुए कहती है,'' आश्रमस्थ मृगियों ने अपने प्रिय भोज्य पदार्थ कुशों के ग्रास को खाना बन्द करके उसे उगल दिया है, मयूरों ने सहज नाचना छोड़ दिया है, लतायें अपने पीले पत्तों को नीचे गिराते हुए मानों आँसुओं की वर्षा कर रहे हैं। शकुन्तला द्वारा बचपन से पालित अति प्रिय मृग शावक प्रेम प्रदर्शन करते हुए शकुन्तला के मार्ग को रोक रहा है तथा अपने मुख से उसके वस्त्रों को पकड़कर पीछे खींच रहा है।'' वास्तव में, प्राचीन काल में ऋषियों–मुनियों के आश्रमों में मानवों, पशुओं तथा वनस्पतियों में कितना प्रेम था जैसे सभी एकाकार होकर वहाँ निवास करते थे तथा एक दूसरे के सुख में सुखी तथा दुःख में दुःख की अभिव्यक्ति करते थे।

वैदिक काल से ही पर्यावरण के प्रति विशेष चैतन्यता दिखाई देती है, अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि जल, वायु और औषधियों अर्थात् वनस्पतियों से यह भूमण्डल घिरा हुआ है। यह मानव को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। इन्हें छन्दस या आह्लादक भी कहते है।

मेघदूत में कालिदास ने वनों को अग्नि से होने वाली क्षति को ध्यान में रखकर मेघ से कहा है कि यदि हिमालय के वनों में अग्नि दिखाई दे, तो उसे तुम अच्छी तरह बुझा देना। महाकवि कालिदास जी ने ही कुमार सम्भव में पार्वती का वृक्षों के प्रति वात्सल्य प्रेम पुत्र से भी बढ़कर प्रदर्शित किया है। पार्वती जी ने छोटे–छोटे पौधों को लगाकर घड़ों स जल पिलाकर बड़ा किया है। कालिदास जी ने शकुन्तला से कहलाया है कि वृक्षों पर मेरा सगे भाई के तुल्य प्रेम है। केवल पिता की आज्ञा ही नही है। इसी प्रकार अभिज्ञान शकुन्तला तथा मालविकाग्निमित्रम् में भी कालिदास का वनस्पतियों जीव–जन्तुओं तथा पर्यावरण के प्रति प्रेम द्रष्टव्य होता है, जिसे वहां अपने रचना के पात्रों के माध्यम से प्रगट करते है। शकुन्तला की विदाई के समय वायु की विशेषताओं में शीतल, मन्द, सुगन्ध से पूर्व कल्याणकारी होने की कामना की गई है। 'ऋतुसंहार' रचना के बसन्त ऋतु के वर्णन का उपसंहार करते हुए बताया है कि इस ऋतु में मलपाचल की शीतल, मन्द एवं सुगन्धित वायु चलती है।

पर्यावरण को शुद्धता प्रदान करने में यज्ञों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 'यज्ञोऽयं सर्व कांमधुक' अर्थात् 'यज्ञ सब कामनाएँ पूर्ण करने वाले होते हैं।' यज्ञ क्रियाओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण एवं अध्ययन उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया। परिणाम, आश्चर्यजनक ढंग से प्राप्त हुए। यज्ञ से पूर्व उस स्थान के वातावरण में सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रस आक्साइड तथा पानी में वैक्टीरिया की उपस्थिति जहाँ अधिक थी वहीं यज्ञ सम्पादन के बाद वातावरण में इनकी उपस्थिति में कमी देखी गयी। यज्ञादि भस्मों की राख का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ है कि उसमें फास्फोरस, पोटैशियम, मैग्नीशियम तथा नाइट्रोजन आदि भूमि उपयोगी रासायनिक तत्वों की अधिकता थी, जो इन क्रियाओं के वैज्ञानिक महत्व को दर्शाती हैं।

शतपथ ब्राह्मण में अश्वमेध यज्ञ की दृष्टियों के सम्बन्ध में कहा गया है कि ''एष वै दीर्घो नाम यज्ञः। यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तऽआ दीर्घारण्य जायते।।'' यज्ञ का एक नाम 'दीर्घ' भी है। जहाँ यज्ञ का अनुष्ठान होता है वहां पुण्य वन सम्पदा (औषधीय तथा वेद वृक्षों) की वृद्धि होती है। योग वशिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ भगवान राम से वृक्षों के विषय में कहते हैं– ''हे राम ऐसे जीव जिनके पुण्य मध्यम होते हैं वह वायु द्वारा उड़कर औषधि, फल–फूल आदि वृक्षों की योनियों में जन्म लेते हैं। 'अथर्ववेद' का प्रथम काण्ड वृक्षों में जीवन होने के मत की पुष्टि करता है। 'छान्दोग्य उपनिषद' में वृक्षों के सजीवता के विषय में कहा गया है कि हे सौम्य! ''यदि इस बड़े वृक्ष को मूल से काटे तो मनुष्य के रक्त की तरह उनका भी रक्त टपकता है, मध्य (तना) और अग्र भाग (टहनी) काटने से भी वैसा ही जीवन रस निकलता है। वृक्षों में प्राणचेतना का अन्त होने पर वह सूख जाते हैं तथा उनमें किसी प्रकार का प्राण स्पन्दन नहीं रह जाता।'' 'मनु स्मृति' में इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि ''कर्मानुसार जीव

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। वृक्षों में भी मनुष्य की तरह सुख–दुख की अनुभूति होती है। यह भी पत्तियों द्वारा सांस लेते हैं तथा जड़ द्वारा खुराक लेते हैं। यह मात्र चल–फिर नहीं सकते हैं। अतः इन्हें 'स्थावर' कहा जाता है।

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्ड प्ररोहिणः। औषध्यः फलपाकान्ता बहु पुष्प फलो पगाः।।

मनुष्यों की तरह इनमें भी भाव संवेदनायें होती हैं। हरा–भरा होना इनकी खुशहाली तथा सूखना इनकी मृत्यु का प्रतीक है। इससे स्पष्ट है कि पेड़–पौधे भी उसी दिव्य चेतना के प्रकाश पुंज हैं जिसके कि मनुष्य तथा मनुष्येत्तर प्राणी। प्रख्यात भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बसु का सम्पूर्ण जीवन ही इस बात को प्रमाणित करने में लग गया कि 'वृक्षों में भी अनुभूति और भावनायें होती हैं। यह भी सुख–दुख का अनुभव करते हैं।

'आयुर्वेद शास्त्र के पितामह महर्षि चरक के सम्बन्ध में कहा जाता है कि आयुर्वेद की रचना करते समय वे जंगल के एक–एक वृक्षों तथा वनस्पतियों के पास जाते और उनकी विशेषतायें पूछते, वनस्पतियाँ अपनी विशेषताओं तथा औषधि गुणों को स्वयं बता देती थीं। भारतीय धर्मशास्त्रों में पेड़–पौधों और वनस्पतियों से मनुष्य द्वारा स्थापित किये गये सजीव सम्पर्क की अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। महर्षि चरक ने अपने जीवन में हजारों जड़ी–बूटियों का गुण–धर्म मालूम किया था। कौन सी जड़ी–बूटी किस रोग में कैसे प्रयोग की जानी चाहिए, इसका विस्तृत विधान खोजा था। यजुर्वेद की ऋचाओं में प्रकृति के अनेक तत्वों को जीवधारियों के लिए कल्याणकारी होने की प्रार्थना की गई है– ''वे जो नैतिक मर्यादाओं को स्वीकार करने की इच्छा रखते हों, यह वायु उनके लिए सुखकर हो जाये, जल धारायें उनके लिए सुखकर हो जायें, वनस्पतियाँ, नीति परायण जीवन यापन करने वाले हम सबके लिए सुखकर हो जायें, रात हमारे लिए सुखकर हो जाये, भोर सुखकर हो। हे सृष्टिकर्ता! हमारे लिए पृथ्वी और स्वर्ग सुखकर हो जाये। वन देवता हमारे लिए सुखकर हो, सूर्य सुखकर हो जाए और धेनु भी हमारे लिए सुखकर हो'' ऐसी प्रार्थना की गई है। वह मानते थे कि प्रकृति जीवन का स्रोत है। पर्यावरण के समृद्ध होने पर ही मानव जीवन समृद्ध होता है। वे प्रकृति को 'परमेश्वरी' मानकर उसी उपासना 'देव संस्कृति' के रूप में करते थे। ऋषि प्रणीत हमारी महान संस्कृति 'अरण्य संस्कृति' के रूप में जानी जाती थी। प्राचीन ऋषि–मुनिगण, प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षा एवं मानवीय कल्याण हेतु प्रातःकाल उठकर ईश्वर से प्रार्थना करते थे।

पृथ्वीसगन्धा सरसास्तथापः स्पर्शश्च वायुर्ज्वलनः सतेजाः। नथः सशब्दं महतां सहैव, यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

वैज्ञनिकता के दम्भ में आज हम भूल बैठे हैं कि 'मानव जीवन का सुप्रभात' पर्यावरण के अनुग्रह पर ही निर्भर है। नवीनतम वैज्ञानिक विचार 'डीप इकोलॉजी' ने वैदिक एवं पौराणिक अवधारणाओं की ओर हमारा विश्वास बढ़ाया है।

विज्ञान में विकसित नवीनतम 'डीप इकोलॉजी' प्राचीन वैदिक ऋषियों के कथनों को ही दुहराती है तथा नैतिकता एवं मर्यादा की सीमा रेखा खींचत हुए हमसे ऐसा जीवन जीने के लिए आग्रह करती है, जिससे सृष्टि के किसी जीव का शोषण एवं संहार न हो तथा प्राकृतिक संतुलन के साथ ही साथ पर्यावरण की शुद्धता भी विद्यमान रह सके। मानव अपनी जिन बौद्धिक उपलब्धियों पर गर्व करता था, वही आज पर्यावरण के आँचल को तार–तार कर रही हैं। पारिस्थितिक विषमता को देखते हुए आज विज्ञान की सभी शाखाओं के विद्वान मिलकर विज्ञान के 'इकोएथिकल' आयाम को अपनाने की बात कर रहे हैं, जिसमें किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान से पहले उसके पर्यावरणीय एवं नैतिक पृष्ठभूमि पर भी विचार किया जाय। प्रकृति से छेड़छाड़ का ही दुष्परिणाम आज भूकम्प, हिमस्खलन, भूस्खलन, सूखा, बाढ़, बादल फटना मरुस्थलीकरण तथा शारीरिक एवं मानसिक विकलता के रूप में हमारे सामने है। यदि सभी प्राकृतिक समस्याओं का निराकरण करना है तो हमें प्राचीन वैदिक ऋषि–मुनियों द्वारा बताये गये मार्गो का अनुशरण करना होगा तभी हमारा तथा पर्यावरण का अस्तित्व बच सकता है अन्यथा हम जिस डाल पर बैठे हैं उसे काटने का कार्य तो कर ही रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बुल्के कामिल : रामकथा उद्भव और विकास।
2. स्कन्ध पुराण।
3. अग्नि पुराण।
4. कठोपनिषद्।
5. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/5, 4/9, 4/12, 3वॉ2ग, 1वॉ 45,
6. महाभारत, अनुशासन पर्व 30.
7. तुलसीदास, रामचरित मानस।
8. यजुर्वेद 36/17.

*****